International Journal of Applied Research 2020; 6(8): 400-403

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(8): 400-403
www.allresearchjournal.com
Received: 02-06-2020
Accepted: 04-07-2020

प्रशांत कुमार
बिजुली, सदर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
प्रशांत कुमार
बिजुली, सदर, दरभंगा, बिहार, भारत

मेघदूत में प्रेमतत्व का वैशिष्ट्य

प्रशांत कुमार

सारांश
'मेघदूतम' कालिदास–रचित एक खण्ड काव्य है। खण्डकाव्य प्रबन्धकाव्य के दो भेदों–महाकाव्य और खण्डकाव्य–में से एक है। महाकाव्य में जहां नायक या नायिका के जीवन का सर्वांग का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, वहां खण्डकाव्य में उसके जीवन के एक अंग–विशेष का ही उपस्थापन होता है। 'मेघदूतम्' कुल 121 मन्दाक्रान्ता वृत्तों में रचित खण्डकाव्य है, जिसका रस विप्रलम्भ श्रृंगार का वैशिष्ट्य है।

प्रस्तावना
यक्षों के स्वामी कुबेर का एक सेवक हेममाली प्रतिदिन यक्षाधिपति कुबेर की शिव–पूजा के लिए मानसरोवर से पुष्प–चयन करके लाता था। उसकी नवोढ़ा पत्नी का नाम विशालाक्षी था। वह भी अतीव सुन्दरी थी। पति–पत्नी प्रेम के प्रगाढ़ बन्धन में बंधे थे। एक दिन शिवपूजन का समय हो जाने के बावजूद हेमामाली पुष्प लेकर कुबेर के पास नहीं पहुंच सका। वह पुष्प चुनकर तो ले आया था, किन्तु कान्ता के प्रति अत्यधिक प्रेम और आकर्षण के परिणामस्वरूप प्रमादवश समय पर यक्षराज कुबरे के पास फुल लेकर नहीं आ सक। प्रतीक्षारत कुबेर को, पूछने पर, उसने विलम्ब से आने का कारण साफ–साफ दिया। क्रुद्ध कुबेर ने उसे शाप दे दिया कि तुमने देवकार्य के सम्पादन में बाधा पहुंचाकर दुराचार और पाप किया है, अतएव जा, कोढ़ी हो जा और कान्ता से एक वर्ष तक वियुक्त होकर इस स्थान से दूर अधम स्थान (रामगिरी आश्रम) पर चला जा। अलका हिमवत् क्षेत्र है और देवताओं–यक्षों के निवास के कारण स्वर्ग की कोटि में परिगणित होती है, जबकि रामगिरि आश्रम धरती पर है, मध्य भारत में है, अतः उसे अधम स्थान कहा गया है।
अपनी अलका नगरी से रामगिरि पर्वत पर आकर शापित वह यक्ष आश्रम बनाकर रहने लगता है। आठ महीने बीतने के बाद आषाढ़ महीना आने पर उसका विरहजन्य दौर्बल्य इतना अधिक हो जाता है कि उसकी कलाई से उसका स्वर्णकंगन खिसककर गिर जाता है और उसकी कलाई सूनी हो जाती है। इधर प्रकृति में वह देखता है कि पर्वत की चोटी पर मेघ आच्छादित हैं, लगता है जैसे कोई हाथी अपने तिरछे दांतों से पर्वत की चोटी के साथ उत्खात–क्रीड़ा कर रहा हो। आषाढ़ के ये मेघ वियोगी यक्ष के हृदय मे काम–भावना को जागृत करता है। अपने आंसुओं को मन–ही–मन भीतर रोक कर बहुत देर तक वह कुछ सोचता रहता है। फिर उसके मन में यह विचार आता है कि क्यों न अपने इस विरह–दुःख को काम करने के लिए इन मेघों को अपना दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास विरह–वेदना सम्प्रेषित करूं? उसे लगता है, और सही ही लगता है, कि बांटने से यह दुःख कुछ हल्का और सह्य हो जाएगा। कुछ ऐसा ही सोचकर भाव–विह्वल वह यक्ष बड़ी कठिनाई से उन मेघों के समक्ष खड़ा होता है। फिर चमेली के नये फूलों से मेघ की पूजा करके प्रेमपगी वाणी में उसका स्वागत करता है। वह इतना विरह–व्यथित हो जाता है कि चेतन और अचेतन के भेद को भूल जाता है, तभी तो वह एक अचेतन को अपना संदेशवाहक बनाना चाहता है। विरह–व्यथा के कारण वह इतना पागल हो जाता है कि सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति की समझ में आनेवाली इस बात को भी नहीं समझ पाता है कि धुआं, अग्नि, जल और वायु के मिश्रण से निर्मित जड़ पदार्थ के वियोग में खग, मृग और मधुकर जैसे जीवों से सीता का पता पूछते हुए विलाप कर सकते हैं और पुरूरवा उर्वशी के वियोग में विक्षिप्त होकर पेड़–पौधों और हंसादि पक्षियों से उर्वशी का पता पूछ सकते है, तब कुबेर का अनुचर यह यक्ष कामान्ध हो जाने के कारण यदि चेतन और अचेतन में अन्तर करने की क्षमता खो देता है तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जायेगा। यह एक मनोवैज्ञानिक किया है। इसलिए वह मेघ के माध्यम से अपना संदेश अपनी प्रियतमा तक भेजने का निश्चय करता है।
यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ! मैं भाग्य का मारा हुआ कान्तावियुक्त यक्ष आपसे याचना करता हूं कि आप मेरा सन्देश अलका में रहनेवाली मेरी प्रियतमा के पास पहुंचा दें। आप उच्चकुल में उत्पन्न हैं तथा इच्छानुसार रूपधारण करने में भी समर्थ हैं,

इसलिए मेरा विश्वास है कि आप अपनी गरिमा का ध्यान रखते हुए मुझ सन्तप्त को सहारा अवश्य देंगे। आप जब आकाश–मार्ग में आरूढ़ होंगे तो वियोगिनियां अपने पति के आगमन की आशा में आपको उत्कंठित होकर देखेंगी, क्योंकि वर्षा ऋतु के मेघ को देखकर ऐसा कौन पुरूष होगा जो तड़पती हुई अपनी पत्नी की उपेक्षा कर सकेगा।

अपने कर्त्तव्यकर्म का पालन नहीं करने पर उसके प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। भारतीय धर्मशास्त्रों में कर्त्तव्य–कर्मों में होनेवाली छोटी–बड़ी चूकों के लिए अनेक प्रकार के प्रायश्चितों का वर्णन आया है। उसी कड़ी में अलकापुरी में रहने वाले एक यक्ष को प्रमादवश शिव की पूजा में कुबेर को बाधा पहुंचाने के फलस्वरूप एक वर्ष तक पत्नी के वियोग में रामगिरि आश्रम पर अत्यन्त कष्टकर एकाकी जीवन बिताना पड़ता है। यहां इस नीति की ओर स्पष्ट संकेत है कि अपने स्वामी की सेवा में प्रमाद को कभी प्रश्रय नहीं देना चाहिए। उसमें भी शिव की पूजा जैसे महत्कार्य में तो विशेष रूप से प्रमादरहित होकर अपने कर्त्तव्यकर्म का निर्वाह करना चाहिए। [1]

महाकवि कालिदास के 'पूर्वमेघ' के छठे श्लोक में एक अति प्रसिद्ध और सर्वश्लाघ्य नीति–कथन आया है, जिसके अनुसार, गुणवान व्यक्ति से याचना करना सर्वथा उचित है, चाहे सफलता मिले, न मिले। किसी भी स्थिति में अधम व्यक्ति से याचना करना उचित नहीं है, भले ही उस याचना से सफलता मिल रही हो। कालिदास के यक्ष ने अपने संदेश अपनी प्रियतमा तक पहुंचाने के लिए जिस मेघ को चुना है, वह अधम नहीं, उच्च कुल में उत्पन्न है। वह पुष्कर एवं आवर्तक नामक श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न है। उत्तम कुलोद्भूत उन पुष्करावर्तक मेघों को यक्ष श्रेष्ठ मानता है। ये दो मेघ इच्छानुसार रूपधारण करने में भी समर्थ हैं और इन्द्र के खास मेघों में से हैं। अतएव यक्ष अपने संवादवाहक के रूप में इन्हीं मेघों से प्रार्थना करता है। यों तो उसे आशा है कि उसकी प्रार्थना को उनके द्वारा अवश्य स्वीकार किया जाएगा, किन्तु उसका दृढ़ मत है कि चाहे प्रार्थना अस्वीकार ही हो जाए, किन्तु किसी अधम से वह याचना नहीं करेगा–

''याच्जामोघा वरमधिगुणे नाधमें लब्धकामा।। [2]

यक्ष मेघ को आम्रकूट पर्वत से होकर जाने को कहता है। उसका तात्पर्य है कि वहां से गुजरते हुए मेघ आम्रकूट पर लगी हुई दावाग्नि को शमित कर देगा और आम्रकूट पर्वत भी मेघ के द्वारा किये गये इस उपकार का स्मरण कर उसका सवागत करेगा एवं अपने सिर पर धारण कर उसे विश्राम करने की सुविधाएं देगा, क्योंकि यक्ष की मान्यता है, और बिल्कुल सही मान्यता है कि नीच व्यक्ति भी मित्र के पूर्वकृत उपकार का स्मरण करके आश्रय देने में नहीं हिचकता, फिर भला इतना ऊंचा आम्रकूट पर्वत मेघ द्वाराए किये गये उपकार से कृतज्ञ होकर उसका स्वागत–सत्कार क्यों नहीं करेगा। अर्थात् अवश्य की कृतज्ञतावश मेघ का स्वागत–सत्कार करेगा और उसके विश्राम करने की सुविधाएं देगा–

त्वामासार प्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्षत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः
न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।। [3]

नीतिशास्त्र का कथन है कि रिक्तता हल्केपन और पूर्णता गौरव का द्योतक है। अर्थात् सारगुणों से रिक्त सभी वस्तुएं हल्की होती हैं, जबकि सारगुणों से युक्त अथवा पूर्ण वस्तु गुरू या भारी, गौरवपूर्ण और सम्मानजनक होती है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति 'पूर्वमेघ' के बीसवें श्लोक में हुई है। आम्रकूट पर्वत पर अपने जल वर्षाकर रिक्त हो चुके मेघ को यक्ष सलाह देता है कि तुम आम्रकुट से आगे बढ़कर रेवा नदी से जल–ग्रहण कर गुरूता को प्राप्त कर लेना ताकि वायु तुम्हें हल्का समझकर इधर–उधर उड़ा या भटका न सके, तुमसे अपनी बराबरी न कर सके–

''रिक्तः सर्वा भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।'' [4]

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के इस प्रसिद्ध श्लोक में कहा है कि मेरा जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं भी उसका उसी प्रकार भजन करता हूं–

''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'' [5]

इसीलिए 'पूर्वमेघ' के इकतालीसवें वृत्त में उज्जयिनी के महाकाल के समीप पहुंचकर शिव के ताण्डव नृत्य के समय हाथी की गीली खाल ओढ़ने की इच्छा को पूरी करने की सलाह अपने संदेशवाहक मेघ को यक्ष देता है। यक्ष के अनुसार, भगवान् शंकर के ताण्डव नृत्य के समय यक्ष का दूत वह मेघ हाथी की गीली खाल का रूप धारण कर भगवान् शंकर के शरीर को ढंक लेगा। ऐसा करने से शंकर तो प्रसन्न होंगे ही, पार्वती भी प्रसन्न हो जाएंगी, क्योंकि हाथी की खून टपकती गीली खाल को देखकर पार्वती डर जाती थीं। अब हाथी की खाल की जगह मेघ ही खाल का रूप धारण कर लेगा। स्वभावतः पार्वती को घबराहट नहीं होगी। इस प्रकार, मेघ के इस कार्य से शंकर और पार्वती दोनों ही प्रसन्न हो जाएंगे। भगवान् को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम मार्ग भी यही है कि भक्त अपनी अच्छा को उनसे पूरी न कराकर उन्हीं की इच्छा को पूरी करें। [6]

'कोमल हृदय वाला व्यक्ति दयालु होता है', इस तथ्य और सिद्धान्त की अभिव्यक्ति 'उत्तरमेघ' के तैंतीसवें श्लोक में हुई है। यक्ष का संदेश–वाहक मेघ आर्द्रहृदय होने के कारण–हृदय भी है और कोमलहृदय व्यक्ति दयालु होता है। इस दया के कारण किसी का दुःख देखकर वह रो भी पड़ता है। यक्ष के अनुसार, वह (मेघ) अलकापुरी में यक्षाप्रिया के पास पहुंचेगा, तो देखेगा कि वह यक्षप्रिय कोमल और शक्तिहीन शरीरवाली होने के कारण शयया पर भी बड़ी कठिनाई से लेठ पाती है; लेटने पर भी उसे चैन नहीं मिलता है, अतः बैठकर पुनः लेठ जाती है। इस प्रकार की उसकी स्थिति का अवलोकन करके कोमलहृदय मेघ आंसुओं की झड़ी लगाए बिना अर्थात् रोये बिना नहीं रह सकेगा–

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्संगे निहितमसकृद् दुःख दुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।। [7]

नीति कहती है कि जो व्यक्ति दूसरे किसी का उपकार करता है, उस उपकार से उसके स्वयं का भी उपकार होता है, उसके पुण्य में वृद्धि होती है। महाभारतकार व्यास मुनि ने भी स्पष्टतया घोषणा की है कि परोपकार करने से पुण्य होता है और दूसरे को पीड़ा देने से पाप होता है–

'परोपकारःपुण्याय पापाय परपीडनम्।'

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी 'रामचरितमानस' में इस प्रकार की अनेक पंक्तियां प्रस्तुत की हैं, यथा–

''परहित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।''

'उत्तरमेघ' में अपनी प्रिय को सन्देश पहुंचानेवाले मेघ को प्रेरित और प्रोत्साहित करते हुए यक्ष कहता है कि हे मेघ, तुम मेरा सन्देश लेकर पत्नी पहुंचाओगे, इसमें मेरी प्रेरणा तो है ही, इसके अतिरिक्त ऐसा करने से तुम्हें मेरा उपकार करने का पुण्य भी बढ़ेगा, यह नीति–सम्मत और मान्य मत है। इसलिए मेरे आग्रह को स्वीकार करने के कारण तथा अपने को कृतकृत्य तथा पुण्य–प्रापक बनाने के लिए तुम मेरी प्रिया से मेरा यह सन्देश

कहना कि हे अबले! तुम्हारा सहचर रामगिरि आश्रम पर रहता है। वह जीवित है और तुमसे वियुक्त रहते हुए तुम्हारी कुशल का अपेक्षी है। हे मेघ! तुम जानते ही हो कि संसार में दुःख अधिक है और सुख कम है। सुख के क्षण कम आते हैं, दुख के अधिक। सुख के क्षणों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना पड़ता है, परन्तु विपत्ति को बुलाने की आवश्कता नहीं होती है। वह स्वयं, बिना बुलाए, आ जाती है और स्वयं मनुष्य को घेरे रहती है। इसीलिए यदि किसी भी व्यक्ति से भेंट हो तो पहले–पहल उसकी कुशल की पुछनी चाहिए–

''तमायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभ विपदां प्राणिनामेतदेव।। [8]

प्रसिद्व मान्यता है कि मौन स्वीकार का लक्षण होता है–'मौनं स्वीकार लक्षणम्'। रामगिरि आश्रम में पत्नी के वियोग में व्यथित यक्ष जब मेघ को अलका तक जाने का पूरा मार्ग बता देता है तथा अपनी प्रिया से कहा जाने वाला सन्देश भी बता देता है, तो मेघ उसकी प्रार्थना को पूरी–पूरी सुन लेता है एवं अन्त तक कुछ उत्तर नहीं देता है। मेघ के इन मौन का अर्थ यक्ष मेघ की स्वीकृति ही लगाता है। इस भाव को स्पष्ट करते हुए कहता है कि मेघ! आपने अपने मित्र के कार्य को पूरा करने का, मेरा सन्देश मेरी प्रिया को देने और उसका सन्देश लाकर मुझे देने का निश्चय कर लिया है, यह आपको मौन से स्पष्ट होता है। क्योंकि आप उच्च कुलोद्भूत, परोपकारी, कोमल हृदय और मित्र के दुःख से दुःखी होने वाले हैं, मैंने समझ लिया है कि आप मेरी जिज्ञासा का उत्तर अपने शब्दों को द्वारा नहीं, अपितु मेरा अभिलषित कार्य पूरा करके–कर्त्तव्यकर्म को सम्पादित करके ही देना चाहते हैं। यह तो महापुरूषों का लक्षण ही है कि वे शब्द के द्वारा नहीं, अभिलषित कार्य की पूर्त्ति के द्वारा अपनी स्वीकृति देते हैं। प्रकृति में भी प्रेमी का अप्रतिम उदाहरण–चातक और मेघ हैं। जब चातक जल मांगता है तब मेघ बिना बोले और गरजे ही उस जल दे देते हैं, वैसा ही स्वभाव आपका भी है–

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वाया में
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकोभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।

शृंगार के क्षेत्र में और सामान्य जगत् में भी आशा के सहारे व्यक्ति कठिन–से–कठिन परिस्थितियों को झेल लेता है, विषम–से–विषम संकट के दिनों को पार कर लेता है। 'पूर्वमेघ' में यक्ष अपनी पत्नी के जीवित रहने का, इसी आधार पर अनुमान करता है। वह मेघ से इस चिरन्तन सत्य और नीति को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि तुम्हारी भाभी अर्थात् मेरी प्रियतमा यक्षिणि इसी आशा के सहारे बंधकर अब तक जीवन–धारण किये होगी कि शाप की अवधि समाप्त होने पर प्रियतम के दर्शन होंगे। वस्तुतः यह वियोग की अवस्था ही कुछ ऐसी होती है कि इसमें वियोगिनी के प्राण पखेरू तो तत्काल ही उड़ जायें, यदि उन्हें प्रियमिलन की आशा न हों। प्रियमिलन की आशा ही उनके प्राणों को विनष्ट होने से रोकती है, जिस प्रकार कि बन्धन फूल को भूमि पर गिरने से रोके रहता है। जब बन्धन शिथिल हो जाता है, तब फूल पेड़ से गिर जाता है, गिरकर सूख जाता है।

श्रीमद्भाग्वत् के अन्तर्गत वर्णित 'गोपी गीत' इसी प्रेम वेदना पर आधारित है, जो रास पञ्चाध्यायी की आत्मा स्वरूप है। गोपियां तरह–तरह से प्रलाप करती हुई कृष्ण–दर्शन की लालसा से फूट–फूट कर रोने लगती है। तत्पश्चात् कामदेव के मन को भी मथने वाले सलोने श्याम पीतांम्बर एवं वनमाला धारण किये हुए मधुर–मधुर मुस्कान के साथ गोपियों के आगे प्रकट होते हैं–

तासामविरर्भूच्छौरिः स्मयमान मुधाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्त्रग्वी साक्षान्मथन्मथः।। [10]

एक विरह सन्तप्ता बाला अपने अन्तर्मन को शान्त करने के लिए अपने वक्षस्थल पर उस बांके बिहारी अपने प्राणवल्लभ का चित्र अंकित कर अपनी व्यथा को काम करने की कोशिश करती है। इसी व्यथा–कथा से व्यथित हृदय वाला अंग्रेज कवि Shakespear ने कहा है–

"We are such stuff as dreams are made on
our little life is rounded with a sheep" [11]

विरह और मिलन, वेदना और उल्लास, दुख और सुख, रूदन एवं हास मानव जीवन के दो तार हैं और दोनों सत्य हैं। अद्वैत रूप में सब एक हैं एक ही परमात्मा दो रूपों में दिखायी देता है। भक्ता मीरा ने कहा है–

तुम बीच हम बीच अन्तर नाही, जैसे सुरज घामा।

सोने को अलंकार रूप में बदल देने के बाद भी उसका स्वर्णत्व नहीं बदलता है। कलाकार अपनी कला के रूप में उसके भीतर एवं बाहर स्वयं विद्यमान रहता है। इस चरम सौन्दर्य को उपनिषद् भी रूपायित करते हैं–

न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्र तारकं नेमा
विद्युतो भाति कुमोऽयमग्निः तमेव भान्तमनुभाति,
तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति। [12]

वही परब्रहा परमात्मा सच्चिदानन्द घन ब्रहा भक्तों का परम प्रियतम प्राण का आधार, प्राण–सखा है जो भक्तों के प्रेम के लिए उनके पीछे–पीछे दौड़ता फिरता है। भक्त के प्रेम में बन्ध कर वह भक्तों का सुख, मित्र, पुत्र, पत्नी बनकर उसके प्रेम का रसास्वदन करता हुआ अपनी प्रेमलीला का आस्वादन कराता रहता है। जब तक उस मंगलमय विभु से मिलन नहीं होता, आत्मा और परमात्मा दोनों मिलकर एक नहीं हो जाते तब तक आत्मा की वेदना का स्वर सुनायी पड़ते रहना चाहिए, अन्दर में प्रेम की धारा बहती रहनी चाहिए– 'The bride of the soul must be patiently waiting before the divine bridegroom can visit her-but the light of faith should be ever burning in her to welcome the divine consort in her heart of hearts and to be united with his consoling and all-absorbing embrance.'

इस तरह प्रेम और ज्ञान का जब सम्मिलन होता है, आत्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तभी जीवन का अन्तःसौन्दर्य खिल उठता है। प्रेम ही ज्ञान का रस है और ज्ञान ही प्रेम का प्रकाश। प्रेम जब गहराई में उतरता है, तब ज्ञान बन जाता है और जब ज्ञान हृदय के रस में डूबता है तब प्रेम का रूप धारण कर लेता है, और वही प्रेम जब परमात्मा को पाता है, तब आत्मा की चिरन्तन भूख शांत हो जाती है और बस एक ही राग, एक ही स्वर, एक ही ताल जीवन में रह जाता है–

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई।।

निष्कर्ष

महाकवि कालिदास के काव्यों में वेदना से विगलित प्रेम का स्वरूप जो दिखाई देता है वह अति पावन है। प्रेमानन्द का

अत्यंत विश्वासोत्पादक चित्रण उन्होंने अपनी रमणीय रचनाओं में किया है। हृदय में प्रणय दीप के प्रज्ज्वलित हो जाने पर कैसा मोहक प्रकाश फैलता है इसका मधुर चित्र मेघदूत में दिखाई देता है। अतः कहा जा सकता है कि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत में प्रेमतत्व का वैशिष्टय का न केवल काव्यशास्त्रीय महत्त्व है, अपितु कवि ने उसके आध्यात्मिक रूप एवं भौतिक महत्व को भी स्पष्ट किया है।

संदर्भ

1. पूर्वमेघ, श्लोक–1
2. पूर्वमेघ, श्लोक–6
3. पूर्वमेघ, श्लोक–17
4. पूर्वमेघ, श्लोक–20
5. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय– श्लोक
6. पूर्वमेघ, श्लोक–40
7. उत्तरमेघ, श्लोक–33
8. उत्तरमेघ, श्लोक–41
9. उत्तरमेघ, श्लोक–54
10. मेघदूतम्–2/5
11. विक्रमोर्वशीयम्
12. श्रीमद्भागवत्पुराण